ऋण, संरचना तथा दोहरा वित्तीय नियंत्रण: बैंकिंग सेक्टर का एक निदान

05
अध्याय

कौटिल्य ने लगभग तीसरी शताब्दी ई॰पू॰ अपने प्रसिद्ध ग्रंथ अर्थशास्त्र में लिखा था, ''ऋणदाताओं और ऋण प्राप्तकर्ताओं के बीच जिस लेन-देन पर राज्य का कल्याण निर्भर करता है उसके स्वरूप की हमेशा समीक्षा की जाएगी।''

5.1 भूमिका

भारत में बैंकिंग क्षेत्र से संबंधित नीतिगत विचार विमर्श के दौरान हाल में आपके विशिष्ट संकल्पनाओं और चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियां है-नियंत्रित और पुनर्गठित आस्तियों की समस्या, पूंजी पर्याप्तता पर लूमिंग बेसल III अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए संसाधनों को प्राप्त करने में कठिनाई, तथा शासन में सुधार की आवश्यकता। (उदाहरण के लिए नायक समिति की रिपोर्ट देखें)[1]। इन आसन्न समस्याओं का समाधान करने के बाद हमें भारतीय बैंकिंग व्यवस्था की समस्याओं की गहन विश्लेषणात्मक पहचान करने का अवसर प्राप्त होता है जिससे हमें अपेक्षाकृत अधिक सुनिर्धारित समाधानों के लिए आधार प्राप्त होता है।

हम भारत में ऋण के आकार से शुरूआत करते हैं। अनेक संसूचको के संदर्भ में प्रतीत होता है कि भारतीय वित्तीय क्षेत्र समकालीन दौर में पीछे नहीं छूटा है। समग्र ऋण, स.घ.उ. अनुपात और साथ ही बैंकिंग सेक्टर द्वारा परिकलित कुल ऋण का अनुपात भारत के विकास स्तर को देखते हुए लीक से बाहर नहीं है। इसके अतिरिक्त, अन्य देशों की तुलना में समय के अनुसार इसके आकार में कोई नाटकीय बदलाव नहीं आया है। हालांकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में पिछले दशक में उछाल वाले वर्ष आए और ऋण वृद्धि द्वारा उनका पोषण किया गया किंतु अन्य देशों में ऐसे ही अनुभवों के कारण सीमातीत अनुचित एवं भिन्न व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

इसके अतिरिक्त, भारतीय बैंकिंग प्रणाली में चुनौतियां अन्यत्र उत्पन्न होती है तथा दो श्रेणियों में आती है: नीति एवं संरचनात्मक चुनौतियां।

नीतिगत चुनौतियां वित्तीय नियंत्रण से संबंधित है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली एक ऐसी स्थिति से ग्रस्त है जिसे ''दोहरा वित्तीय नियंत्रण'' (चित्र 5.1) कहा जाता है। तुलन पत्र के

चित्र 5.1: भारतीय बैंकिंग तुलन पत्र पर दोहरा वित्तीय नियंत्रण

एनपीए: अनर्जक आस्तियां (डूबा ऋण), एसएलआर: सांविधिक नकदी अनुपात, पीएसएल: प्राथमिक क्षेत्र ऋण ।

[1] कृष्णमूर्ति सुब्रह्मण्यन (आईएसबी और नायक समिति के सदस्य) द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए पुनर्पूंजीकरण आवश्यकता 9.6 लाख करोड़ रु. से 4.8 लाख करोड़ रु. के बीच है जो सरकार द्वारा फोरबियरेन्स की नीति अपनाए जाने तथा अनर्जक आस्तियों में बदल रही पुनर्गठित आस्तियों पर निर्भर करती है।

आस्ति पक्ष पर, वित्तीय नियंत्रण सांविधिक नकदी अनुपात (एसएलआर) अपेक्षा द्वारा सृजित होता है जो बैंकों को सरकारी प्रतिभूतियों को धारित करने के लिए प्रेरित करनी है तथा प्राथमिकता क्षेत्र के ऋण (पीएसएल) है जो पूर्ण से कम दक्ष तरीकों से संसाधन तैनाती को प्रेरित करते हैं। वर्ष 2007 से उच्च मुद्रास्फीति के कारण देयता पक्ष पर, वित्तीय नियंत्रण उत्पन्न हुआ है जिससे ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दरें उत्पन्न हुई है और घरेलू वित्तीय बचतों में तेजी से कमी आई है। चूंकि भारत घटती हुई मुद्रास्फीती के साथ ही देयता पक्ष के नियंत्रण से बाहर निकल रहा है, अत: यह समय आस्ति पक्ष के प्रतिपक्षों का समाधान करने के लिए उपयुक्त हो सकता है।

संरचनात्मक समस्याएं प्रतिस्पर्धा और स्वामित्व से संबंधित है। प्रथमत: ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिस्पर्धा की कमी है जो निजी क्षेत्र के बैंकों में प्रतिबिंबित होता है, जो अपनी उपस्थिति बढ़ाने में सक्षम नहीं है। वास्तव में वर्तमान बैंकिंग प्रणाली का एक विरोधाभाष यह है कि समग्र बैंकिंग समुच्चय में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी ऐसे समय में बढ़ गई जबकि देश में सर्वाधिक तेजी से विकास हो रहा था तथा जिसे निजी क्षेत्र से बल प्राप्त हो रहा था। यह निजी क्षेत्र के बैंकों से वित्तपोषण के बिना ही निजी क्षेत्र के विकास का एक विसंगत मामला था। निजी क्षेत्र के बैंकों के असाधारण विकास जिसके कारण इस विकास चरण को वित्तपोषण प्राप्त किया जा सका, निजी क्षेत्र की चुप्पी आश्चर्यजनक थी।

अंतत: सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में भी निष्पादन में पर्याप्त अंतर है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को एक बड़ा समांग खंड मानना एक गलती होगी। एक ही आकार हर दृष्टिकोण के उपयुक्त हो, हमें ऐसे दृष्टिकोण को अपनाने के बजाय पुन: पूंजीकरण, निर्गम और सरकारी स्वामित्व के स्तर के संबंध में अधिक चयनात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

यह अध्याय चार प्रमुख नीतिगत सिफारिशों के साथ समाप्त होता है, अर्थात: नियंत्रणमुक्त करना (वित्तीय नियंत्रण के संदर्भ में), विभेदन (निजी क्षेत्र के बैंकों के भीतर) विविधीकरण (बैंकिंग के भीतर और बाहर) तथा अन्वेषण (अधिक दक्ष निर्गम मार्ग सृजित करना)।

5.2 देयता पक्ष पर वित्तीय नियंत्रण

चित्र 5.2 में गत 14 वर्षों के दौरान भारत में सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों में जमाराशि पर प्राप्ति की औसत दर का आलेखित किया गया है। इनका परिकलन भारतीय रिर्जव बैंक द्वारा सूचित किए गए अनुसार सावधि जमा पर भारित औसत प्राप्ति तथा केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय द्वारा उस वर्ष के संदर्भ में सूचित किए गए अनुसार सीपीआई-आईडब्ल्यू मुद्रास्फीति दर के बीच के अंतर के रूप में किया जाता है। उच्च मुद्रास्फीति तथा बैंक आस्तियों पर सीमित प्राप्ति से यह सुनिश्चित हुआ है कि बैंकों द्वारा प्रतिधारित दरों से परिवारों को जमाराशि पर एक ऋणात्मक वास्तविक प्राप्ति दर हासिल हुई है।

चित्र 5.2: जमाराशियों पर प्राप्तियों की औसत वास्तविक दर

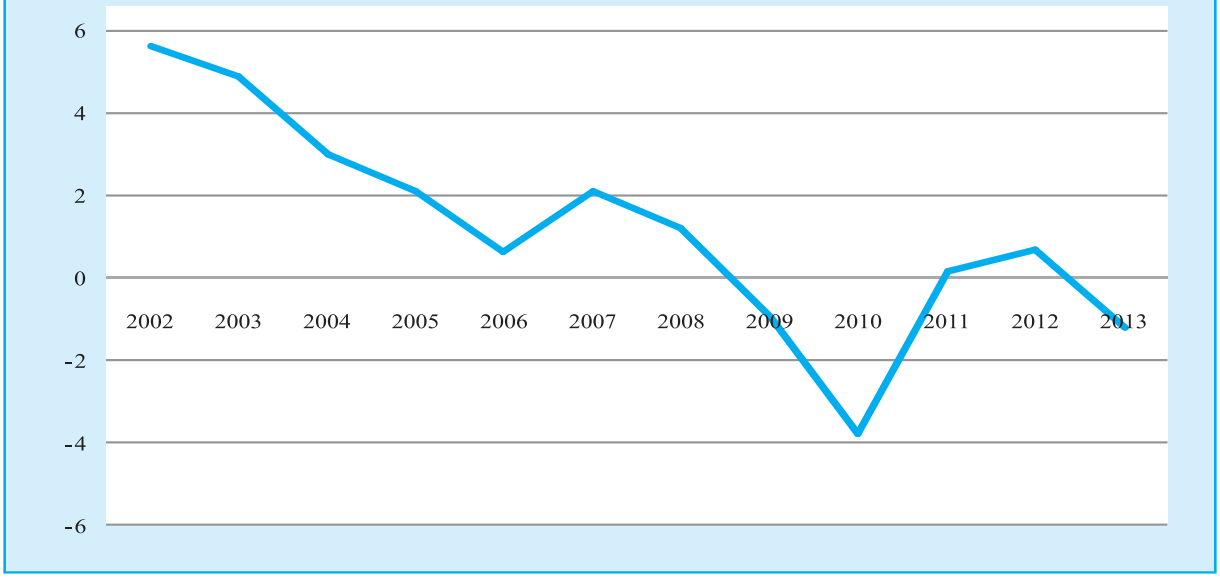

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक तथा केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय

सारणी 5.1 : स.घ.उ. के प्रतिशत के रूप में बचत

	2004-05	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14
पारिवारिक (वित्तीय)	10.1	12.0	9.9	7.0	7.1	7.2
पारिवारिक (भौतिक)	13.4	13.2	13.2	15.8	14.8	10.6
पारिवारिक (कुल)	23.6	25.2	23.1	22.8	21.9	17.8
सकल	32.4	33.7	33.7	31.3	30.1	30.6

स्रोत : केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय ध्यान दें: 2013-14 में नई विधि प्रयोग में लाई गई।

परिवारों द्वारा की गई बचत सकल पूंजी निर्माण में सबसे बड़ा सहयोजक है। परिवारिक बचतों के दो संघटक होते है- वित्तीय और भौतिक, जबकि परवर्ती संघटक अर्थव्यवस्था में वित्तीय मध्यस्थता के लिए अपनानी से प्राप्त नहीं होता। जैसाकि सारणी 5.1 से देखा जा सकता है, पारिवारिक बचतों में भौतिक आस्तियों का योगदान गत दशक की संपूर्ण अवधि में 60% से अधिक के स्तर पर रहा है।

5.3 आस्ति पक्ष पर वित्तीय नियंत्रण

आस्ति पक्ष पर वित्तीय नियंत्रण का भारत में एक लंबा इतिहास रहा है। 1970 के दशक में सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था और विशेषकर वित्तीय क्षेत्र में अपनी भूमिका विस्तृत करने पर इसके लिए पूंजी का प्रावधान करने के लिए बैंक पूंजी को एक तरफ रखने के लिए नए नियम लागू करने पड़ें। इस संदर्भ में दो प्रमुख बातें सांविधिक नकदी अनुपात और प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण देना हैं।

5.3.1 सांविधिक नकदी अनुपात

सांविधिक नकदी अनुपात बैंकों द्वारा नकद आस्तियों जैसेकि नकदी, सरकारी बांडों और सोना जैसी आस्तियों में अपने संसाधनों को धारित करने की अपेक्षा है। सिद्धांत रूप में, एसएलआर एक विवेकपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है क्योंकि जमाकर्ताओं की किसी भी अनपेक्षित मांग को इन आस्तियों का नकदीकरण करके आसानी से पूरा किया जा सकता है।

एसएलआर अपेक्षाएं परंपरागत रूप में उच्चस्तर पर बनी रही है। 1991 से पूर्व के 38% से नाटकीय रूप में घट कर यह 1990 के दशक के आखिरी वर्षों में लगभग 25% हो गया। तथापि, उसके बाद यह संख्या एक चौथाई के आसपास रही केवल हाल ही में घटकर यह 22% हो गया है। 4 फरवरी, 2015 की स्थिति के अनुसार न्यूनतम अपेक्षा कुल आस्तियों के 21.5% की है। बैंक आम तौर पर अपेक्षित एसएलआर से अधिक राशि अपने पास सुरक्षित रखते हैं। वास्तव में मौजूदा प्राप्त एसएलआर 25%[2] से अधिक है। व्यवहार में, एसएलआर सरकार के बड़े राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने (अनुमानत: बाजार में प्रचलित से कम दर) का एक साधन जिससे यह ज्ञात होता है कि एसएलआर में कटौती करना सरकार की राजकोषीय स्थिति[3] का द्योतक है।

बॉक्स 5.1 में इस अपेक्षा अर्थात बैंकों के लिए पूंजी मुक्त करने और सरकारी बांडों के लिए बाजार को अधिक तरल बनाने की अपेक्षा को क्रमश: कम करने के लिए एक मामला प्रस्तुत किया गया है।

5.3.2 प्राथमिकता क्षेत्र के लिए ऋण (पीएसएल)

भारत में ऋण की समानता का एक प्रमुख संघटक तथा कथित ''प्राथमिकता क्षेत्र के लिए ऋण'' (पीएसएल) रहा है। सभी भारतीय बैंकों के लिए पीएसएल के संबंध में 40% लक्ष्य को प्राप्त करना अपेक्षित है। कानून कहता है कि सरकारी या निजी सभी घरेलू वाणिज्यिक बैंकों की अपने समायोजित निवल बैंक ऋण (एएनबीसी) का 40% या अपने ऑफ बैलेन्स शीट एक्सपोजर की ऋण समतुल्य राशि इनमें से जो अधिक हो का प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए ऋण देना होगा और विदेशी बैंकों (20 से अधिक शाखाओं वाले) के संबंध में संख्या 32% है। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने उपश्रेणियों-कृषि, सूक्ष्म और लघु उद्यमों, शिक्षा, आवास निर्माण, निर्यात ऋण और अन्य उपश्रेणियों के संबंध में अपने द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों का स्पष्टत: उल्लेख किया है। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को दिए जाने वाले संपूर्ण ऋण का 45% भाग निश्चित रूप से कृषि क्षेत्र को दिया जाए।

---

[2] यह विसंगति संभवत: उच्च दबावयुक्त आस्तियों के परिणामस्वरूप हो सकता है जो एक समादृत जोखित भारित पूंजी पर्याप्तता अनुपात बनाए रखने के लिए जोखिम मुक्त सरकारी प्रतिभूतियों में अतिनिवेश को प्रोत्साहित करता है। बैंकों के इस स्थिति से उबरने और वित्तीय क्षेत्र के अपनी क्षमता तक वापस आ जाने के बाद हम इस विसंगति को समाप्त कर सकते हैं।

[3] विश्वनाथन, विविनम, ''डीवाईके: सीआरआर और एसएलआर के बीच अंतर'' लाइवमिन्ट, 2014।

बॉक्स 5.1 : सांविधिक नकदी अनुपात में कमी लाना

एसएलआर एक प्रकार का वित्तीय नियंत्रण है जिसमें सरकार निजी क्षेत्र के व्यय पर घरेलू बचत को बढ़ावा देती है। वास्तविक ब्याज दरें अन्यथा जितनी होती उससे कम हैं।

हाल ही में, भारतीय रिजर्व बैंक ने एसएलआर को 25: से क्रमश: घटाकर 21.5: करके सराहनीय कार्य किया है। प्रश्न यह है कि इस क्षेत्र में महत्वाकांक्षा को निरंतरता प्रदान की जा सकती है अथवा नहीं। तीन घटनाएं इस प्रश्न को विशेष रूप से मौन बनाती है।

हमेशा से ही यह तर्क दिया जाता रहा है कि एसएलआर में तभी कमी लाई जा सकती है। क्योंकि एसएलआर सुधार में पूंजी की भूमिका होती है न कि उसके प्रवाही की। यदि सरकार की राजकोषीय स्थिति में सुधार आए। यह बात केवल अंशत: ही सत्य है। भारत की राजकोषीय घाटा स्थिति को देखते हुए अभी भी सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है किंतु सार्वजनिक ऋण की स्थिति में निरंतर सुधाार हो रहा है तथा उधार लागत की तुलना में भारत में विकास और मुद्रास्फीति के कारण इसमें आगे भी निरंतर सुधार होता रहेगा। एक दशक के दौरान समग्र ऋण ग्रस्तता (केंद्र और राज्य सरकारें) 80 प्रतिशत से घट कर 60 प्रतिशत हो गई है तथा इस रूझान के बने रहने की आशा है क्योंकि भविष्य में अनुकूल ऋण घटक के जारी रहने की आशा है और विकास दर 8 प्रतिशत से अधिक बनी रहेगी।

इससे समय की तुलना में एसएलआर को चरणबद्ध रूप में कम करने के लिए पहला अवसर सृजित हुआ है। इस संबंध में आश्वस्त होने के लिए सरकार की ऋण प्राप्त करने की लागत अधिक होगी। किंतु इसके परिमाण के कम होने की संभावना है जिसके दो कारण है। पहला यह कि लागत केवल ऐसे ऋण पर ही बढ़ेगी जो आगामी 5 वर्षों में परिपक्व हो रहा है और जो कुल बकाया ऋण का लगभग 21.1 प्रतिशत है और दूसरा लंबे समय से बरकरार मुद्रास्फीति के लिए बृहतर परिवेश और उसमें प्रगति के कारण वास्तविक ब्याज दरों में कमी के लिए अनुकूल माहौल बनेगा।

दूसरा कारण बैंकों के स्वास्थ्य से संबंधित है। ब्याज दरों में कमी आने पर अधिकांश सरकारी प्रतिभूतियों को धारित करने वाले बैंकों के लिए पूंजी में वृद्धि की संभावना है। एसएलआर में कटौती से उन्हें सरकारी प्रतिभूतियों को ऑफ लोड करने तथा पूंजी लाभ प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा जिससे उन्हें पुन: पूंजीकरण में सहायता प्राप्त होगी और उनके लिए सरकारी संसाधनों की आवश्यकता कम होगी और निजी संसाधनों को जुटाने में मदद मिलेगी (यह बैंकों को अपनी सरकारी प्रतिभूतियों को बाजार में चिह्नित करने तथा लेखांकन लाभों को प्राप्त करने की अनुमति प्रदान करने की तुलना में बैंकों के पुन: पूंजीकरण का एक बेहतर और अधिक स्पष्ट तरीका है)। किसी भी नैतिक दृष्टि से जोखिम वाली बात को टालने के लिए पुन:पूंजीकरण से लाभ पहले अनर्जक आस्तियों के लिए प्रावधान करने के लिए प्रयोग में लाया जाए तथा केवल अधिशेष राशि का ही पूंजी के रूप में परिकलन किया जाए।

तीसरा कारण, अवसंरचना वित्त पोषण के संबंध में हाल के अनुभव से संबंधित है। सरकारी निजी भागीदारी (पीपीपी) आधारित परियोजनाओं को या तो सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा या फिर विदेशी मुद्रा-मूल्यवर्गित ऋण (ईसीबी) के माधयम से वित्तपोषित किया गया है। यहां पूर्ववर्ती अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने इस संबंध में काफी कम बात करके चालाकी सिद्ध की है तथा परवर्ती अर्थात ईसीबी के माध्यम से ऋण प्राप्त करने से कारपोरेट क्षेत्र और विशेषकर अवसंरचना क्षेत्र की लाभकारिता में कमी लाने में योगदान किया है: निवेशकों ने डॉलर में उधार लिया और उनका राजस्व मुख्य रूप से रुपये में था, इस कारण रुपये का अवमूल्यन होने पर उनकी लाभकारिता और तुलनपत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

अत: अभी यह अन्य प्रकार के अवसंरचना वित्तपोषण विकसित करने के लिए उपयुक्त समय है जो विशेषकर एक बाँड बाजार के माध्यम से किया जा सकता है। किंतु एसएलआर ने सरकारी बाँड बाजारों के विकास को बाधित भी किया है जो कारपोरेट बाँड बाजारों के विकास को अवरुद्ध करता है। अत: एसएलआर में कमी लाना अवसंरचना वित्तपोषण हेतु बेहतर स्रोत प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है। सुधार का लक्ष्य एसएलआर और सीआरएआर[क] को अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों पर आधारित एक वांछनीय स्तर पर निर्धारित एक नकदी अनुपात में संयोजित करना होना चाहिए।

[क] बैंक की पूंजी को ऋण जोखिम, बाजार जोखिम और प्रचालनात्मक जोखिम हेतु सरल जोखिम भारित आस्तियों से विभाजित करने पर सीआरएआर प्राप्त होता है।

सुनिश्चित रूप में, यह कहा जा सकता है कि पीएसएल से संबंधित सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य इसे भारत में बैंकिंग का एक मुख्य संघटक बनाता है। किंतु सब्सिडी और प्रत्यक्ष अंतरण के मामलों के समान ही यह सुनिश्चित करने पर निश्चित ही अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है कि वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त साधन सर्वाधिक प्रभावी है। अत: साक्ष्य प्रेरित नीति की अधिक आवश्यकता है तथा नीचे दिए गए बॉक्स 5.2 में कृषि क्षेत्र हेतु ऋण के संदर्भ में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है।

इस बॉक्स में हमने राम कुमार और चव्हान (2014) से परिणाम प्राप्त किए है तथा कृषि क्षेत्र को ऋण के संबंध में निष्कर्षों का उल्लेख करते हुए उनका संक्षेप में वर्णन किया गया है। निराकरण के उपाय काफी हद तक सुविचारित पद्धति नहीं है इसमें यह परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है किन क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाए और किस प्रकार इन निधियों के संवितरण पर गहन नजर रखी जाए। यह खास तौर से जरूरी है 40 प्रतिशत हिस्से की आवश्यकता बैंक के संसाधनों से अवशोषित होती है।

बाक्स 5.2 : कृषि ऋण: बढ़ती संख्या में कमी लाना*

1. देश में आए बदलाव के बाद से कुल कृषि ऋण पर्याप्त रूप से बढ़ा है। वृद्धि की वार्षिक दर जो 1981-1991 में औसतन 6.8 प्रतिशत थी, वर्ष 2001-2011 में 17.8 प्रतिशत हो गई। सामान्य सन्दर्भ में, कृषि ऋण विगत 15 वर्षों में आठ गुणा से अधिक बढ़ा है इस सत्य के विपरित कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि का हिस्सा अक्सर स्थिर बना रहा, इस समय महत्वपूर्ण नगरीकरण हुआ।

अवधि	वार्षिक वृद्धि दर		
	कृषि के लिए ऋण	कुल बैंक ऋण	कृषि संबंधी स.घ.उ.
1981-1991	6.8	8.0	3.5
1991-2001	2.6	7.3	2.8
2001-2011	17.8	15.7	3.3

2. कृषि हेतु लिए गए वृहत ऋणों में तेजी से बढ़ोतरी हुई है जैसाकि नीचे दी गई सारणी में दर्शाया गया है जो संविदा को प्रमाणित करती है।

वर्ष	बैंचमार्क क्रेडिट सीमाओं के साथ प्रत्यक्ष अग्रिमों (प्रतिशत) का संवितरण (रुपए में)			
	< 2 लाख	> 2 लाख	< 10 लाख	> 10 लाख
1990	92.2	7.8	95.8	4.2
1995	89.1	10.9	93.6	6.4
2000	78.5	21.4	91.3	8.7
2003	72.6	27.4	87.5	12.5
2005	66.7	33.4	88.1	11.9
2011	48.0	52.0	76.2	23.8

3. कृषि ऋण बकाया हिस्सा जो शहरी और महानगरीय क्षेत्रों के अन्तर्गत आता है में पर्याप्त रूप से वृद्धि हुई है, जो कि पूरी तरह उलझन पैदा करने वाली है।
4. जनवरी से मार्च तक लिए गए कृषि ऋण के संवितरण को संकेंद्रित किया जा रहा है जो कि सामान्यत: किसानों द्वारा लिए गए उधार की सामान्य अवधि नहीं होती। इससे यह पता चलता है कि प्राथमिक क्षेत्र के ऋण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बैंक उन महिनों में संभवत: अधिक ऋण क्रिया कलाप बढाए जब किसानों को इनकी अधिक आवश्यकता नहीं होती।
5. कुल कृषि ऋण में दीर्धावधिक ऋण के हिस्से में तीव्र कमी आई है। इसलिए कृषि ऋण के उस हिस्से में जो कृषि के क्षेत्र में पूंजी निर्माण के लिए उपयोग में लाया गया था, कमी आ गयी है। यह 1991-92 में 70 प्रतिशत से कम होकर वर्ष 2011-12 में लगभग 40 प्रतिशत रह गया है।
6. इस साक्ष्य का निहितार्थ है कि कृषि क्षेत्र को ऋण देना अत्यधिक हो सकता है और यहां अधिकतर बड़े किसानों को जाता है। यह कृषि पूंजी निर्माण के लिए उपयोग नहीं हो रहा है। शायद इसका बड़ा हिस्सा प्रमुख कृषि कार्यकलापों के लिए बिलकुल नहीं जाता है।

*बिंदु 1 से 5 में रामकुमार तथा चौहान (2014), के विश्लेषण ''2000 में भारत में कृषि हेतु लिए गए बैंक ऋण: पुनरूत्थान का विश्लेषण'' अग्रेरियन अध्ययन की समीक्षा का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

5.4 बैंकिंग तथा ऋण का तुलनात्मक विश्लेषण

5.4.1 क्या भारत में ऋणों की भरमार है और बैंक व्यवस्था का अतिरेक है?

भारत में बैंक द्वारा भारी मात्रा में दिए गए ऋणों के साथ, ऋण और स.घ.उ. के हिस्से में 2000 में 35.5 प्रतिशत से बढकर वर्ष 2013 में 51 प्रतिशत बढ़ोतरी के साथ पिछले दशक[4] में ऋण में बढ़ोतरी देखी गई है। क्या यह असामान्य है? हम चार तरीके से इस प्रश्न का उत्तर देते हैं।

सबसे पहले, हमने भारत तथा चुनिन्दा अन्य देशों (चित्र 5.3) (विश्व बैंक के अनुसार परिभाषित)[5] में ऋण स.घ.उ. अनुपात में क्रम विकास दर्शाया। अधिकांश देशों की तुलना में ऋण का स्तर न अपेक्षाकृत गिरा न ही यह इतनी तीव्रता से बढ़ा। दूसरे अगर हम परस्पर देशीय तुलना करे तो

[4] कृपया देखें ''भारत में कारपोरेट के पिछड़ेपन तथा बैंक के ऋण निष्पादन'' आईएमएफ स्टॉफ कार्यशील दस्तावेज तथा ''ऋण समूह'' ऋण अनुसंधान

[5] इन ग्राफों का प्रयोग वित्तीय कारपोरेशन द्वारा निजी क्षेत्रों को उपलब्ध कराए गए वित्तीय संसाधनों के रूप में परिभाषित निजी क्षेत्रों के लिए ऋण, गैर इक्विटी प्रतिभूतियों की खरीद तथा व्यापार ऋण और प्राप्ति योग्य अन्य खाते के माध्यम से विश्व बैंक के घरेलू ऋण को दर्शाने के लिए किया गया है। जो वापसी अदायगी का दावा स्थगित करते हैं।

चित्र 5.3: घरेलू ऋण और स.घ.उ. अनुपात (समय श्रंखला) भारत की स्थिति निम्न मध्य आय वर्ग वाले देशों से भी नीचे है

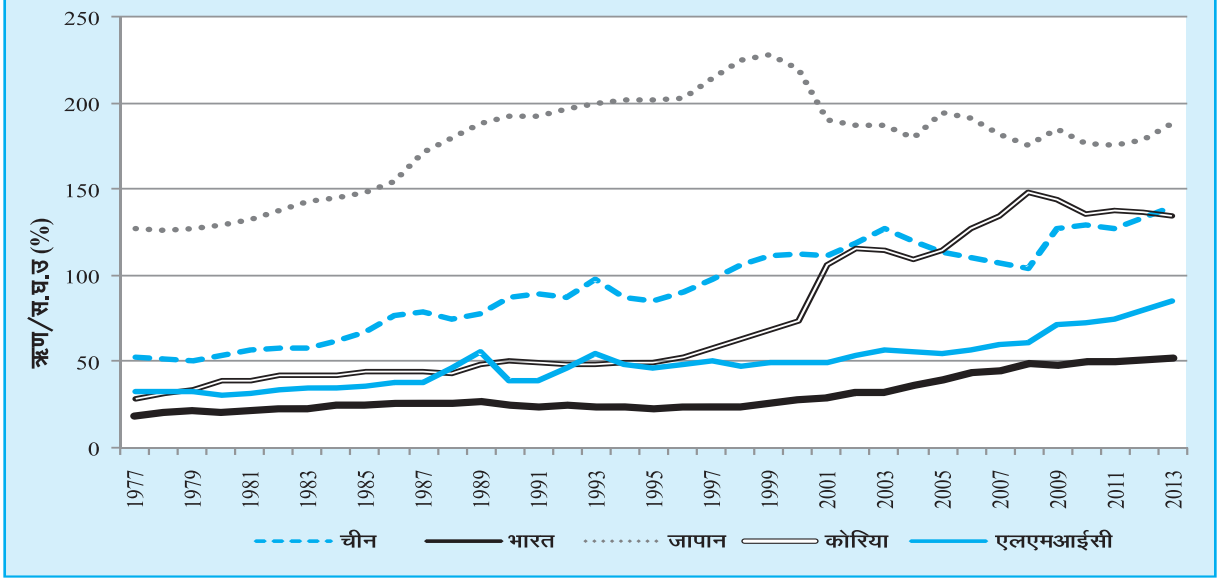

स्रोत : विश्व बैंक डाटा बैंक *टिप्पणी* : एलएमआईसी का आशय निम्न और मध्य आय वाले देशों से है।

परोक्सी के रूप में (चित्र 5.4) खरीद शक्ति (पीपीपी) के सन्दर्भ में प्रति व्यक्ति स.घ.उ. का प्रयोग करते हुए एक देश के विकास के स्तर के लिए उसी संकेतक का इस्तेमाल करना। जैसे ही देश और धनी होते हैं वे उर्ध्व दिशा में परिलक्षित करते हुए औसतन ऋण में वृद्धि की ओर अग्रसर होते हैं[6] लेकिन फिर से भारत इस ट्रेन्ड लाइन के निकट है इस बात का संकेत देते हुए कि विकास के इसके स्तर पर ऋण स्तर न्याय संगत है।

चित्र 5.4: वर्ष 2013 में प्रति व्यक्ति स.घउ. में घरेलू ऋण भारत ने अच्छा प्रदर्शन किया

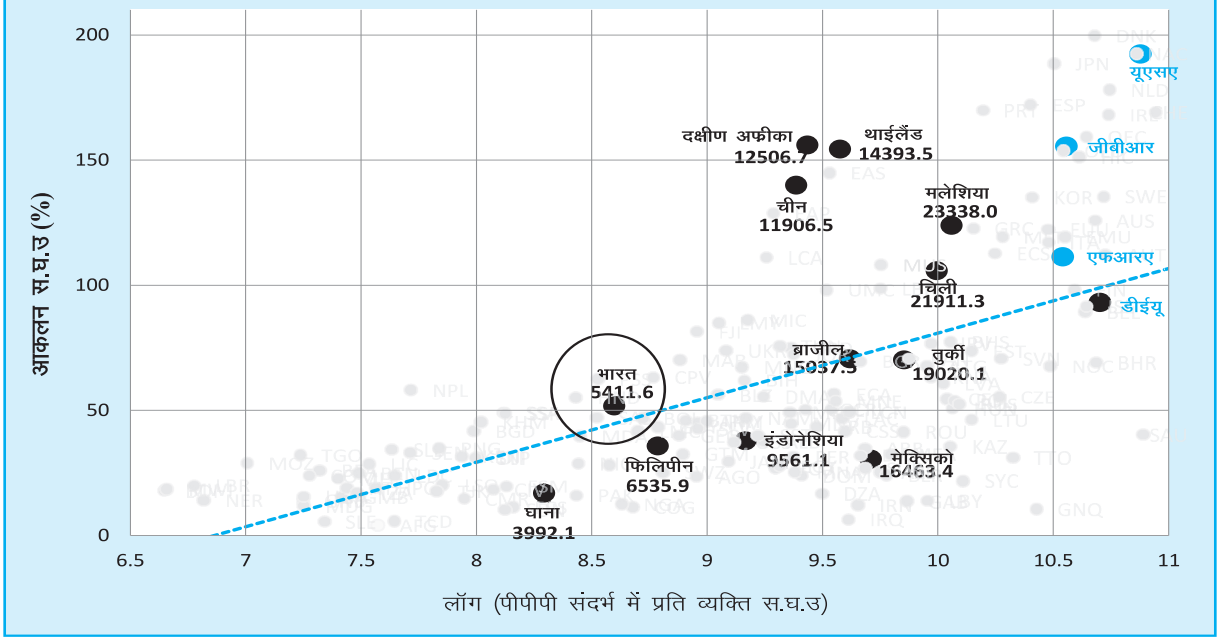

स्रोत : विश्व बैंक डाटा बैंक

[6] नोट किया जाए कि विश्व बैंक डाटा में 176 देशों के समग्र समूह के लिए ट्रेन्ड लाइन निर्धारित की गई। आगे हमारा कहना है कि क्या भारत में बैंकों की अधिकता है।

चित्र 5.5: वर्ष 2014 के कुल ऋण के भाग के रूप में बैंकिंग ऋण

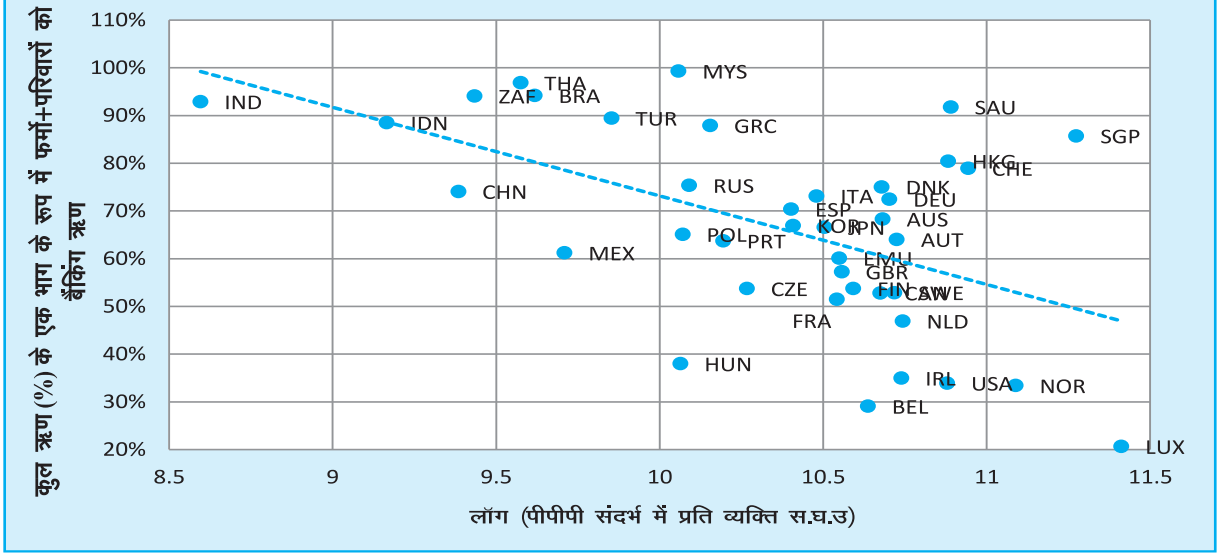

स्रोत : अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक

चित्र 5.5 में हम अर्थव्यवस्था में कुल ऋण में शेयर निर्धारित करते हैं, जो कि एक देश के विकास स्तर के लिए बैंकों द्वारा दिया जाता है[7]। रूख की यह गिरती प्रवृत्ति सुझाती है कि निधियन के अन्य स्रोतों जैसे पूंजी बाजार से संबंधित विकास के सन्दर्भ में बैंकिंग प्रक्रिया कम कर देनी चाहिए। यहां भी, भारत की सुदृढ़ स्थिति है, यहां तक कि यह ट्रेन्ड लाईन से नीचे है। न तो भारत में बैंक की अधिकता है न ही विकास के चरण पर पूंजी बाजार इतने कम हैं। समय के साथ इसमें बदलाव लाना होगा और पालिसी शर्तें इस तरह सुसाध्य बनानी होगी लेकिन अब भारत इससे परे नहीं है।

अन्त में, यह पूछना लाजमी है कि क्या भारतीय बैंक तथा वित्तीय प्रणाली विकास के चरण में विशेष रूप से गैर जिम्मेवार तथा अविवेकी रहे हैं। इसके उत्तर में हम टेक आफ टाइम में क्रेडिट स.घ.उ. संबंधी आंकडों को आलेखित करते हैं (चित्र 5.6)। प्रत्येक देश के लिए आरम्भिक बिन्दु वहां से शुरू होता है जब इसकी विकास दर बढने लगती है। चार्ट

चित्र 5.6: टेक ऑफ के बाद सघउ में घरेलू ऋण-भारत ने अच्छा प्रदर्शन किया

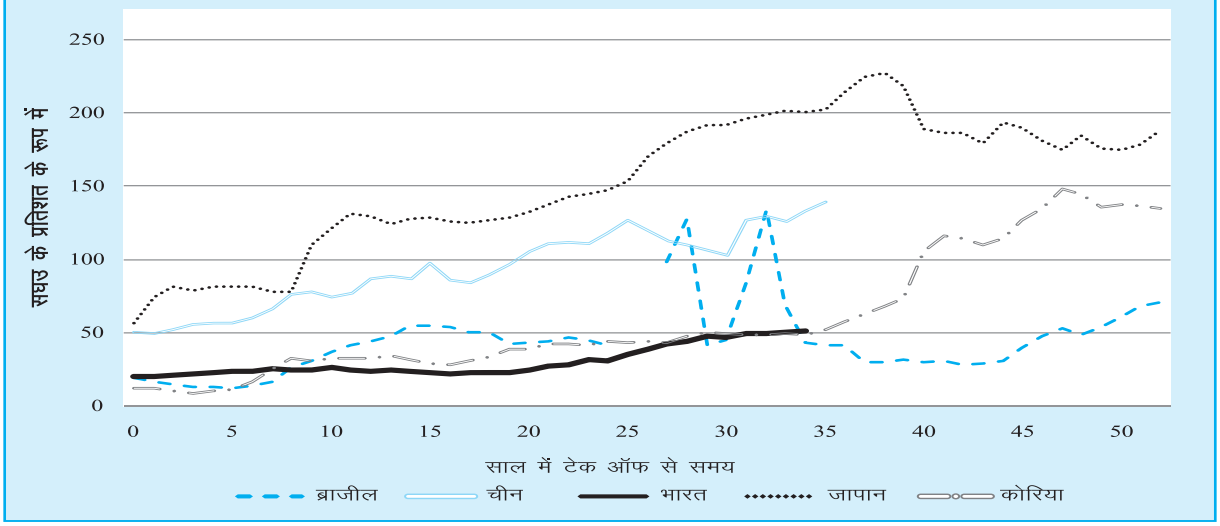

स्रोत : विश्व बैंक डेटाबैंक

टिप्पणियां : टेक ऑफ के वर्ष ब्राजील, जापान और कोरिया: 1961, चीन, 1978, भारत; 1979

[7] बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेट्लमेंट द्वारा परिभाषित किए गए अनुसार, इसमें गैर-वित्तीय निगमों (निजी और सरकारी स्वामित्वाधीन), परिवारों और परिवारों को सेवित करने वाली गैर लाभकारी संस्थाओं को राष्ट्रीय लेखा प्रणाली 2008 में परिभाषित किए गए अनुसार दिया गया ऋण शामिल है।

चित्र 5.7क: कुल जमाराशि में अनुपात (अंश)

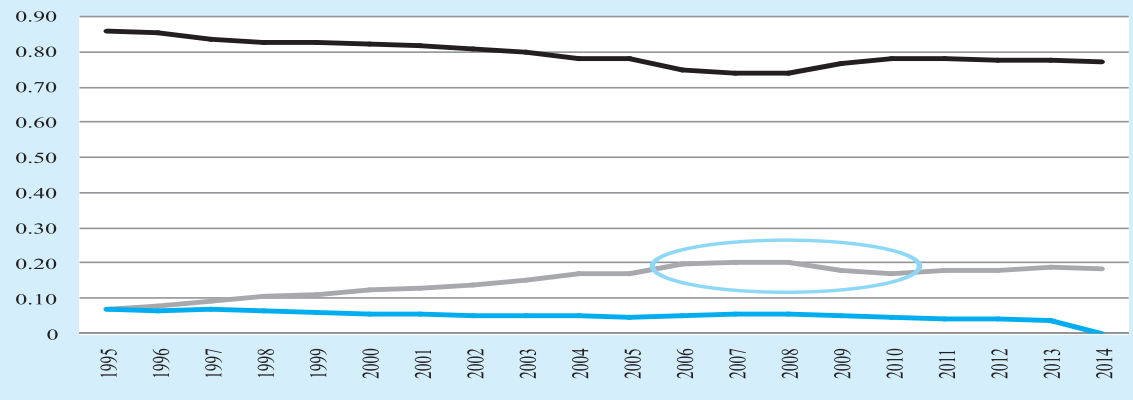

चित्र 5.7ख: कुल अग्रिम में अनुपात (अंश)

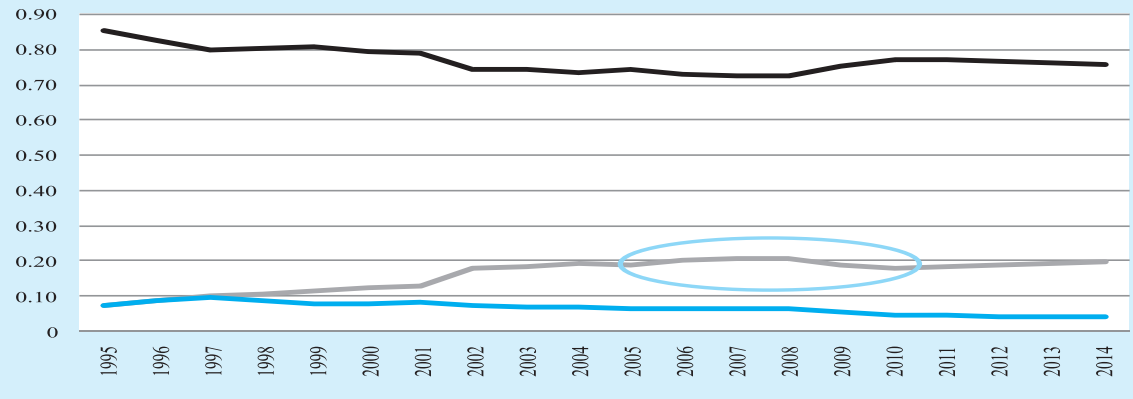

में दर्शाया गया है कि भारत का ऋण आंकड़े तुलनीय अवधि के दौरान देशों के अनुभव के मुकाबले इतने खराब नहीं थे। चीन तथा जापान जैसे अन्य देशों ने उछाल के इन वर्षों में ऋण में तीव्र वृद्धि दर्शाई। इस प्रकार वर्ष 2000 के दौरान व्यापक ऋण वृद्धि के अंतिम चरण में भी विश्व के अन्य देशों के मुकाबले भारत की वित्तीय प्रणाली इतनी अधिक समृद्ध नहीं थी। जैसा कि अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक द्वारा परिभाषित है इसमें शामिल है: गैर वित्तीय कारपोरेशनों (निजी स्वामित्व तथा सरकारी स्वामित्व वाली दोनों) को दिए गए ऋण, राष्ट्रीय खाता प्रणाली 2008 में यथा परिभाषित परिवार तथा गैर लाभकारी संस्थान सेवारत परिवार।

यह साक्ष्य वास्तविक रूप में इस प्रश्न पर प्रमाणित होता है कि संरचनागत पक्ष पर क्या समस्या है?

5.4.2 क्या पर्याप्त प्रतिस्पर्धा है?

भारत में बैंकिंग क्षेत्र की स्थिति के बारे में मुख्य चिन्ता आन्तरिक प्रतिस्पद्धा की पर्याप्त कमी रही है। 1990 से निजी बैंकों को धीरे-धीरे इस क्षेत्र के अन्तर्गत लाया गया है। यह उल्लेखनीय है कि भारत का दृष्टिकोण सरकारी क्षेत्र के बैंकों के निजीकरण का नहीं है फिर चाहे वे नए निजी बैंकों को प्रवेश की अनुमति देने पर आधारित क्यों न हो। इस कार्यनीति ने दूर संचार तथा नागर विमानन क्षेत्रों में भली भांति कार्य किया लेकिन क्या यह बैंकिंग क्षेत्र में भी कारगर होगी? परिणाम मिले-जुले हैं।

चित्र 5.7 क और ख दर्शाते है कि भारत में जमाराशि तथा उधार संकेतकों के सन्दर्भ, दोनों में, वर्ष 2007 तक निजी क्षेत्र के बैंकों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी देखी गई। तत्पश्चात् यह प्रक्रिया पर्याप्त रूप से धीमी रही (वैशक लेहमन संकट के परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र के बैंकों (पीएसवी) की दिशा में सुरक्षित स्थिति बनी) इसलिए हालिया बैंकिंग इतिहास का एक विरोधाभाष यह है कि समग्र वैंकिंग समूह में निजी क्षेत्र का हिस्सा ऐसे समय में बटा है जब देश में तीव्र विकास देखा गया और जब इसे निजी क्षेत्र द्वारा पूरा किया गया।

यह निजी क्षेत्र के बैंक द्वारा वित्तपोषण के बिना निजी क्षेत्र के विकास का अनोखा मामला है। निजी क्षेत्र के बैंक जो विकास के चरण को वित्तपपोषित करते हैं, को प्रवेश दिए

जाने की अनुमति देने के बावजूद निजी क्षेत्र की मौन उपस्थिति का एहसास हो रहा है।

प्रतिस्पर्धा का प्रश्न, निधियन के अन्य स्रोतों पर भी लागू होता है। चित्र 5.5 यह सुझाता है कि भारत का बैंकिंग का आकार, विकास के स्तर की तुलना में बहुत अधिक विस्तृत नहीं है जिससे यह सुझाव मिलता है कि पूंजी बाजारों से प्रतिस्पर्धा का स्तर, क्षेत्रपार प्रतिस्पर्धा की दिशा में है। वास्तव में, यदि आने वाले समय, अगले बीस वर्षों में भारत 8 प्रतिशत वार्षिक दर पर प्रगति करता है तो बैंकिंग से अलग, भारत के वित्तीय क्षेत्र की संरचना में तेजी से परिवर्तन वांछनीय है। इस परिवर्तन से पारदर्शिता और कॉरपोरेट जोखिम का अपेक्षाकृत अच्छा मूल्यांकन प्रोत्साहित होगा।

5.5 क्या सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, कार्य निष्पादन में एक समान हैं?

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों एवं निजी क्षेत्र के बैंकों के कार्य निष्पादन में कितना अंतर है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए चित्र 5.8 में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंकों के संबंध में चार प्रमुख बैंकिंग संसूचकों-सीआरएआर, लेवरेज अनुपात, परिसंपतियों पर रिटर्न एवं गैर-कार्यनिष्पादन + पुनर्संरचित सम्पतियां[7] की समय श्रृंखला दर्शाई गई है।[8]

भारित औसत संख्याओं के अलग, चित्र में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए 95 प्रतिशत विश्वास अंतराल भी दिखाया गया है (ऊपरी रेखा उच्च विश्वास स्तर को और निचली रेखा

चित्र 5.8क: बैंकिंग संसूचक: सीआरएआर

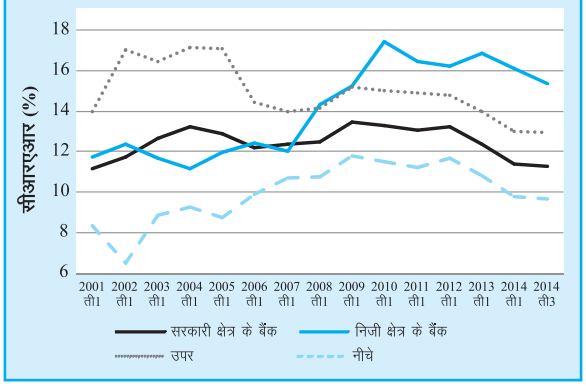

चित्र 5.8ख: बैंकिंग संसूचक: लेवरेज अनुपात

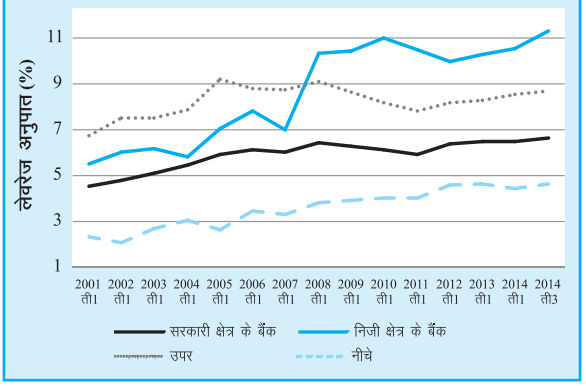

चित्र 5.8ग: बैंकिंग संसूचक: आस्तियों में अनुपात

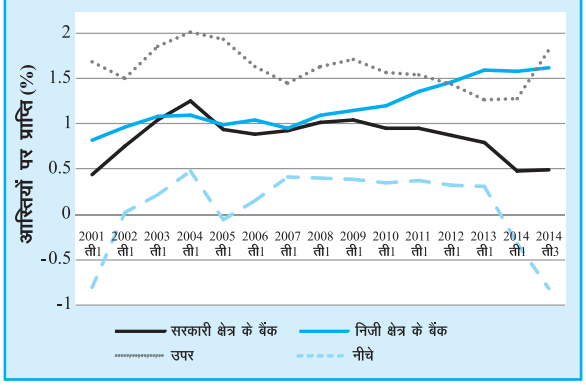

चित्र 5.8घ: बैंकिंग संसूचक: एनपीए+पुनर्गठित अग्रिम

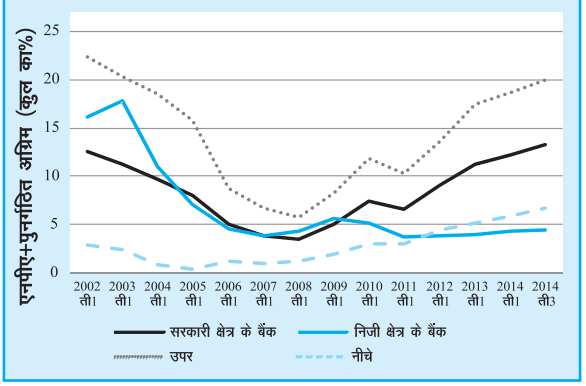

[8] जोखिम भारित परिसंपत्ति अनुपात की तुलना में पूंजी (सीआरएआर) की गणना साख जोखिम, बाजार जोखिम और प्रचालन जोखिम के लिए समग्र जोखिम परिसंपत्तियों से बैंक की पूंजी राशि को विभाजित करके की जाती है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लेवरेज अनुपात की परिभाषा कुल पूंजी की तुलना में कुल परिसम्पत्तियों के अनुपात के रूप में की गई है। बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेट्लमेंट्स उदाहरण के तौर पर दी गई अंतर्राष्ट्रीय परिभाषा विशेषत: विपरीत है। इस अध्याय के उद्देश्य से हम अंतर्राष्ट्रीय परिभाषा का इस्तेमाल करेंगे। परिसंपत्तियों पर रिटर्न एक लाभदायकता अनुपात है, जो कुल परिसंपत्तियों पर सृजित कुल लाभ (शुद्ध आय) को दर्शाता है। इसकी गणना औसत कुल परिसंपत्तियों से शुद्ध आय को विभाजित करके की जाती है, अनर्जक परिसंपत्तियां-लीज वाली परिसंपत्ति सहित कोई परिसंपत्ति अनर्जक परिसंपत्ति बन जाती है, जब यह बैंक के लिए आय सृजन करना बंद कर देती है। पुनर्संरचित आस्ति-पुनर्संरचित खाता वह है जहां बैंक उधारकर्ताओं को ऐसी रियायतें देता है, जिन्हें देने पर बैंक अन्यत्र विचार नहीं करता है।

निम्न विश्वास स्तर को सूचित करती है) ध्यान दें कि अनर्जक आस्ति को छोड़कर संख्या जितनी अधिक होगी, सूचक उतना ही बेहतर होगा। चित्र से पता चलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के बीच ही परस्पर काफी भिन्नता है। संख्यात्मक रूप में, सर्वोत्तम बैंक का लेवरेज अनुपात, सबसे खराब बैंक की तुलना में लगभग 1.7 गुना से अधिक है और सबसे खराब बैंक की सकल एनपीए जमा पुनर्संरचित सम्पतियां, सबसे अच्छे बैंक की तुलना में 4 गुना अधिक हैं। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में से सबसे अच्छा कार्य कर रहे बैंकों द्वारा प्राय: निजी क्षेत्र औसत से कम कार्य निष्पादन किया जा रहा है। यद्यपि इस तथ्य को, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सौंपे गए अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक दायित्वों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

बॉक्स 5.3 : लेवरेज अनुपात

पश्चिम में बड़ी मंदी (2008-2013) के परिणामों में से एक परिणाम बैंकिंग प्रणाली में जोखिम एवं सुरक्षित पूंजी के पर्याप्त उपायों की तलाश करना है। पूर्व में लगभग सभी स्ट्रेस टेस्ट, कुल परिसम्पत्तियों की तुलना में पूंजी के जोखिम भारित मापन के अनुपात पर आधारित थे। भारत में सीआरएआर-पूंजी और जोखिम (भारित) परिसंपत्ति अनुपात नामक अवतार नीति और लोकप्रिय प्रबन्धन में बैंक स्थिरता के लिए पूंजी पर्याप्तता का प्रभावशाली उपाय रहा है।

तथापि, इस उपाय के प्रति बढ़ता हुआ अंतर्राष्ट्रीय असंतोष है क्योंकि यह यूएस और यूरोप में वित्तीय संकट से पूर्व जोखिम प्रवृति को नियंत्रण में रखने में असमर्थ रहा। इसी कारण से लेवरेज अनुपात की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कुल परिसंपति और कुल पूंजी के अनुपात के रूप में परिभाषित, उदाहरण के तौर पर, बैंक ऑफ इंटरनेशनल सैंटीमेंट्स द्वारा निर्धारित अंतर्राष्ट्रीय परिभाषा, विशिष्ट रूप से, विपरीत है। हम अंतर्राष्ट्रीय परिभाषा का इस्तेमाल करेंगे।

प्रख्यात अर्थशास्त्रियों, पेगानो और अन्य (2014), द्वारा यूरोपीय बैंकों के संबंध में किए गए अध्ययन से प्राप्त रिपोर्टों में कहा गया है कि: "जबकि बड़े बैंकों का लेवरेज अनुपात वर्ष 2000 और 2007 के बीच कम हुआ, विनियामक अनुपात-जोखिम भारित परिसंपतियों के प्रति टियर I पूंजी अपेक्षाकृत स्थिर रही। मध्य टियर I पूंजी अनुपात वर्ष 1997 और 2007 के बीच प्रत्येक वर्ष लगभग 8% रहा। इस अवधि में मध्यम लेवरेज अनुपात में आधे तक कमी आई। ये दोनों मापन वर्ष 1990 तक आशा के अनुरूप अत्यधिक सहसम्बन्धी थे। परंतु यह सहसम्बन्ध 2000 के आरंभ में सबसे बड़े बैंकों के संदर्भ में टूट गया। वर्ष 2012 तक यह सहसम्बन्ध काफी नकारात्मक हो गया। उल्लेखनीय रूप से, किसी सहसम्बन्ध का नकारात्मक होने का आशय है कि ऐसे बैंकों, जो विनियामक के अनुसार अधिक पूंजीकृत थे, के पास अपेक्षाकृत कम इक्विटी-परिसम्पत्ति अनुपात थे।"

ऐसा क्यों हुआ? सामान्य अंकगणित से स्पष्ट होता है कि जोखिम भारित परिसंपतियों की तुलना में कुल परिसंपतियों का अनुपात, समय के साथ ही, विचलित हुआ। जोखिम भार अपना कार्य नहीं कर रहे थे।

नीचे दिए गए चित्र में यूरोप और भारत के संदर्भ में दो संसूचकों-सीआरएआर एवं लेवरेज अनुपात के सहसम्बन्ध की समय श्रृंखला दी गई है। यूरोप में यह सहसम्बन्ध पिछले दशक में निरन्तर नीचे की ओर गया है जो पिछले कुछ वर्षों में, चिंताजनक रूप से, नकारात्मक अंकों में रहा। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के मामले में, सीआरएआर और लेवरेज अनुपात के पिछले तीन वर्षों के औसत का सहसम्बन्ध 0.45 पर है जो अच्छा है किंतु काफी नहीं है। वास्तव में, जैसा कि चित्र से स्पष्ट होता है यह सहसम्बन्ध वर्ष 2010 में 0.1 से कम रहा।

चित्र: भारत (बायां) और यूरोप (दायां) के पीएसबी के संदर्भ में सीआरएआर-लेवरेज अनुपात का सहसंबंध

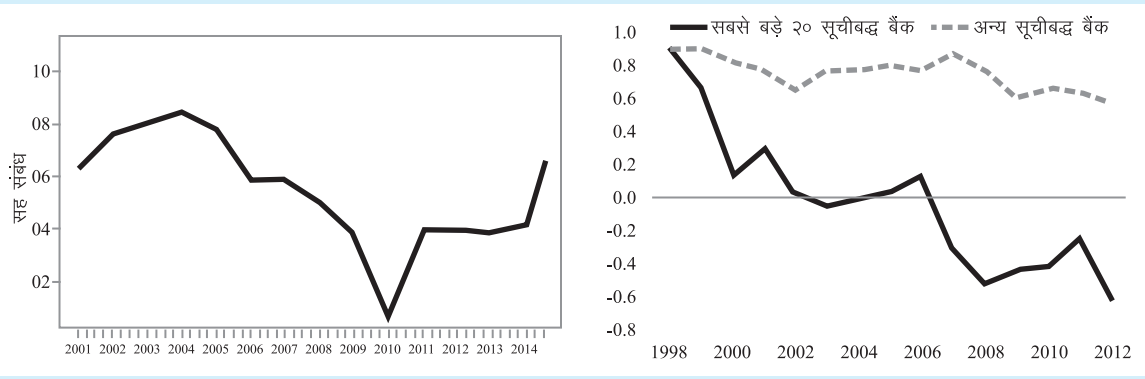

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक, ब्लूमबर्ग तथा पेगानो और अन्य (2014)[क]

[9] ऊपरी और निचली रेखाएं सीआरएआर, लेबेरेज अनुपात, आस्तियों पर और एनपीए हेतु आरक्षित निधि पर लाभ के संदर्भ में क्रमश: दूसरे या तीसरे सर्वोत्तम और सबसे खराब बैंकों की निरूपित करती हैं।

चित्र: निजी क्षेत्र के बैंकों का लेवरेज अनुपात तथा सीआरएआर का आलेख (2012-14 से तीन वर्षों का औसत)

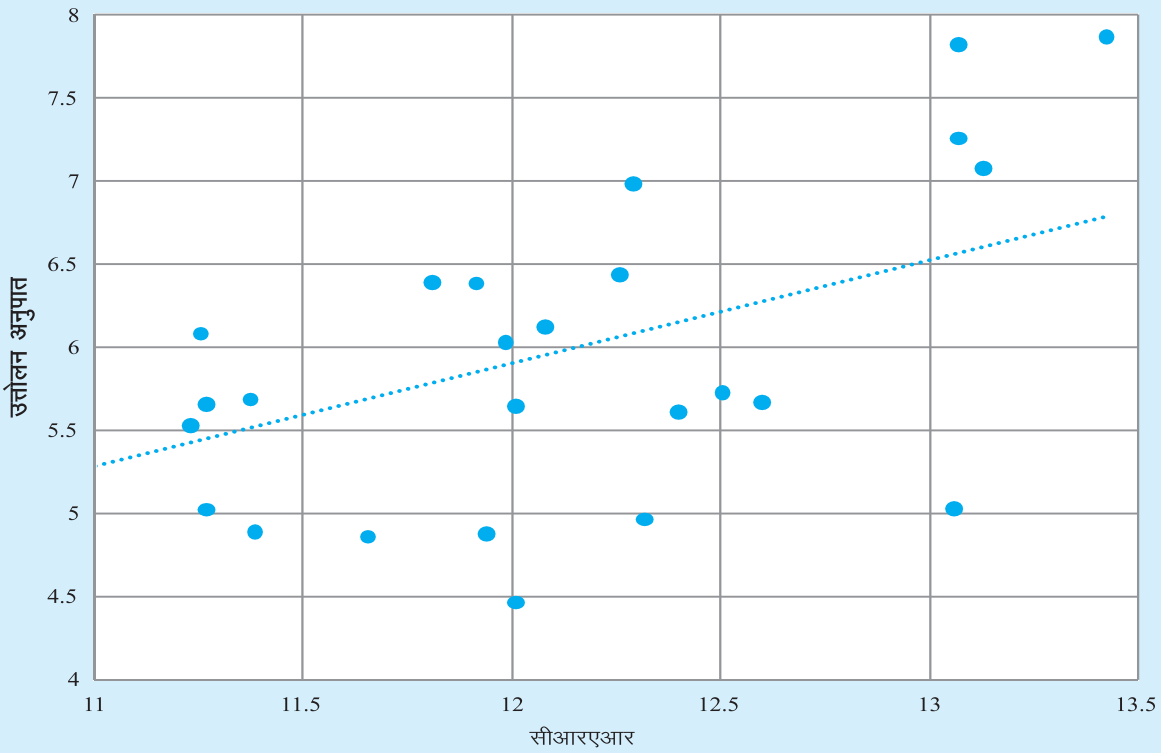

***स्रोत* : भारतीय रिजर्व बैंक**

नीचे दिए गए चित्र में, पिछले तीन वर्षों में भारत के निजी क्षेत्र के सभी बैंकों के संदर्भ में सीआरएआर और लेवरेज अनुपात प्रकीर्ण आलेख दिया गया है। जैसा कि देखा जा सकता है, प्रवत्ति रेखा सकारात्मक रूप से ढाल पर है जो कि एक अच्छा संकेत है। तथापि कुछ चिंताजनक संकेत भी हैं जिनकी जांच अवश्य की जानी चाहिए।

इस प्रकीर्ण चित्र में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों हेतु लेवरेज अनुपातों का औसत 7.8 से 4.5 के बीच होना दर्शाया गया है। अदमति और हेलविग ने एक नई पुस्तक "बैंकर्स न्यू क्लोथ्स" में तर्क दिया है कि बैंक 3% दिवालिया हो जाएगा यदि वह अपनी परिसंपत्तियां 3% से अधिक खो देता है। बैंक स्वयं किसी ऐसी फर्म का ऋण नहीं देते हैं जिसके पास केवल 3% की प्रभावी पूंजी होती है। वे 10 से अधिक, यहां तक कि 15% के अपेक्षाकृत ऊंचे लेवरेज अनुपात का प्रस्ताव करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि यदि किसी बैंक के पास सामान्य-निम्न लेवरेज अनुपात, और परिसंपत्तियों पर बहुत अच्छा रिटर्न एवं नगण्य एनपीए है तो इस स्थिति में लेवरेज अनुपात की तुलना में उसके खातों में पर्याप्त मात्रा में टॉक्सिक ऋण एक चिंता का विषय है।

इसके कम से कम दो कारण हैं कि भारत में लेवरेज अनुपात पर क्यों ध्यान दिया जाना चाहिए। पहला कारण, जैसा कि यूरोपीय और भारतीय अनुभवों से पता चलता है कि सीआरएआर, विशेषकर ऐसी विपरीत परिस्थितियों में जब जोखिम भार अपेक्षाकृत दीर्घकाल तक मान्य होते हैं, स्थिरता का एक बहुत कमजोर संसूचक हो सकता है। इससे अधिक महत्वपूर्ण, बैंकों के अंदर ही कमजोर शासन प्रणालियां और बाहर से उन्हें विनियमित करने में होने वाली कठिनाई के रहते, यह जानना मुश्किल है कि जोखिम भार किस प्रकार सौंपे जा रहे हैं, प्रतिबलित परिसंपतियों के आकार के कारण यह महत्वपूर्ण हो जाता है। दूसरे शब्दों में, आज कमजोर अनुदेशों और पर्याप्त प्रतिबलित परिसंपतियों के साथ, पारदर्शिता पर अपेक्षाकृत अधिक प्रीमियम है जो लेवरेज अनुपात उपलब्ध कराता है।

इसलिए, भारतीय विनियामकों और नीति निर्माताओं को वित्तीय स्थिरता और समर्थता मूल्यांकन में लेवरेज अनुपात की भूमिका को बढ़ाना चाहिए।

(क) एम पेगानो, वी. आचार्य, ए.ब्रूट, एम-ब्रुनरमीयर, सी बुच, एम हेलविग, एस लैंगफील्ड, ए सामिर, और एल वानडेन बर्ग, (2014) इज यूरोप ओवर बैक्ड? सलाहकार वैज्ञानिक समिति की रिपोर्ट, यूरोपियन सिस्टेमिक रिस्क बोर्ड, जून

(ख) अदमाती, अनत और मार्टिन हेल्विग, 2013। द बैंकर्स न्यू क्लोथ्स: व्हाट इज रांग विद बैंकिंग एंड व्हाट टू डू एबाउट इट। प्रिन्सेशन यूनिवर्सिटी प्रेस

चित्र 5.8 में दो अन्य प्रमुख बातें भी ध्यान देने योग्य हैं। पहला, लेवरेज अनुपात में भिन्नता, सीआरएआर की तुलना में बहुत अधिक है। और दूसरा, परिसंपत्तियों पर रिटर्न कम हुआ है तथा प्रतिबंधित परिसंपति ऋण बढ़कर चिंताजनक स्तर तक पहुंच गए हैं और इस संबंध में बैंकों में परस्पर काफी भिन्नता है। पहले में, बॉक्स 5.3 वित्तीय स्थिरता के मापन, जांच और प्रबंध न हेतु, सीआरएआर अनुपात की तुलना में उतने ही, परंतु उससे कम नहीं, लेवरेज अनुपात के इस्तेमाल के लिए, विशेषकर भारत हेतु सशक्त मामले को प्रस्तुत करता है।

5.6 नीतिगत निहितार्थ

संक्षेप में, हम नीति की प्रगति को नियंत्रणमुक्त करने, अन्तर करने, विविधीकरण, और अन्वेषण का प्रस्ताव करते हैं।

- **नियंत्रणमुक्त करना:** चूंकि बैंकिंग क्षेत्र, मुद्रास्फीति में कमी की सहायता से, देयता पक्ष के प्रति वित्तीय निरोध से बाहर निकलता है, यह परिसंपति पक्ष के निरोध को कम करने का एक पूर्ण अवसर है। पहला, जैसा कि बॉक्स 5.1 में वर्णन किया गया है, एसएलआर जरूरतों को धीरे-धीरे कम किया जा सकता है। इससे बैंकों को नकदी, सरकारी बाँड बाजार में गहनता, और कॉरपोरेट बैंक बाजार के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा। एसएलआर को धीरे-धीरे कम करना और तत्पश्चात् गहन बांड बाजार के लिए प्रोत्साहन उपलब्ध कराना एक सही क्रम होगा। दूसरा, पीएसएल मानदण्डों का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके दो विकल्प हैं: एक अप्रत्यक्ष सुधार, जिसमें पीएसएल के प्रभाव क्षेत्र में अधिक क्षेत्रों को लाना जब तक कि इस सीमा में प्रत्येक क्षेत्र एक प्राथमिकता वाला क्षेत्र न बन जाए; दूसरा मानदण्डों का पुन: परिभाषित करना, ताकि प्राथमिक क्षेत्र को धीरे-धीरे अधिक लक्ष्योन्मुख, अपेक्षाकृत छोटा और आवश्यकता जनित बनाया जा सके। एक आधुनिक अर्थव्यवस्था बनाने तथा विशेषकर पीएसएल के संदर्भ में अधिक साक्ष्य आधारित नीति निर्माण सहित, आय मांग सृजनात्मक के निम्नतम शतमंक के रहन-सहन के स्तर को उठाने की दोहरी जिम्मेदारी है।
- **पीएसबी के भीतर ही विभेद:** इस अध्याय के विश्लेषण से पता चलता है कि सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों के कार्य-निष्पादन और आकार में काफी भिन्नता है। नीतिगत् निहितार्थ यह है कि शासन सुधारों, सार्वजनिक स्वामित्व, निकासी और पुन:पूंजीकरण के प्रति वन-साईज-फिट्स-ऑल एप्रोच के स्थान पर एक अधिक चयनात्मक दृष्टिकोण[8] अपनाया जाना चाहिए।
- **बैंकिंग प्रणाली के भीतर और बाहर विविधता:** अधिक संख्या में बैंकों और अधिक किस्म के बैंकों को प्रोत्साहित किया जाए। पूंजीबाजारों से स्वस्थ प्रतिस्पर्धा भी अनिवार्य है, जिसके लिए नीतिगत सहायता की जरूरत होगी जिसकी चर्चा पिछले वर्ष के आर्थिक सर्वेक्षण में विस्तार से की गई थी।
- **अन्वेषण:** भविष्य के लिए दिवालियापन पद्धतियों के संबंध में अच्छी पद्धतियां अनिवार्य हैं। ऋण वसूली न्यायाधिकरणों पर कार्य का बोझ अधिक है और उनके पास संसाधन कम हैं जिसके कारण धीमी गति से कार्य होता है और न्याय मिलने में देरी होती है। बैंकों की स्वयं की महत्वपूर्ण साझेदारी के भीतर एसेट रिस्ट्रक्चरिंग कंपनियों की स्वामित्व संरचना में वांछित से कम है। एसएआरएफईएसटी अधिनियम में सबसे छोटे उधारकर्त्ताओं और मध्यम क्षेत्र के उद्यमों के विरुद्ध अधिक कार्य करना प्रतीत होता है। आपदाग्रस्त परिसंपतियां, अर्थव्यवस्था के ऊपर डेमोक्लीज की तलवार की भांति लटकी रहती हैं और इसके लिए सृजनात्मक समाधान की जरूरत है। एक संभावना, कुछ बड़े और कठिन मामलों के समाधान के लिए राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न और एक सुप्रतिष्ठित स्वतंत्र पुर्नसमझौता आयोग की नियुक्ति की जानी है। जब अगली कोई तेजी और मंदी आएगी तो भारत को प्रमोटरों, क्रेडिटरों, उपभोक्ताओं और करदाताओं के बीच इस भार को बांटने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है।